सामाजिक परिवर्तन के विविध कारक हैं। वस्तुत: किसी भी समाज में होने वाला परिवर्तन एक कारक का परिणाम नहीं होता है। इतना हो सकता है कि परिवर्तन लाने में विभिन्न कारकों में कोई एक कारक अन्य कारकों की तुलना में ज्यादा निर्णायक हो। सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न कारकों में जैविक, जनसंख्यात्मक एवं आर्थिक कारकों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जैविक कारकों का सम्बन्ध वंशानुक्रमणीय पद्धति से है; जनसंख्यात्मक कारक जनसंख्या के आकार एवं बनावट से सम्बन्धित हैं; जबकि आर्थिक कारकों का सम्बन्ध आर्थिक संस्थाओं एवं अर्थव्यवस्था से है। प्रस्तुत अध्याय में सामाजिक परिवर्तन के लिए उत्तरदायी इन तीनों कारकों को समझाने का प्रयास किया गया है।

जैविक कारक
[BIOLOGICAL FACTORS]

सामाजिक परिवर्तन लाने में जैविक कारकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। जैविक परिवर्तन सामाजिक परिवर्तनों को जन्म देते हैं। **डार्विन** की प्रसिद्ध पुस्तक **'ओरिजिन ऑफ स्पेसीज'** (*Origin of Species*) में प्राकृतिक प्रवरण (Natural selection) के सिद्धान्त के अन्तर्गत योग्यतम प्राणी के जीवित रहने तथा निर्बलों की समाप्ति अथवा लोप अथवा जीवित रहने के लिए जिस संघर्ष (Struggle for existence) की बात कही गई है वह जैविक परिवर्तन तथा उसके फलस्वरूप होने वाले सामाजिक परिवर्तनों पर पर्याप्त प्रकाश डालता है।

जैविक कारक में हम आनुवंशिकता (वंशानुक्रमणीय पद्धति) में होने वाले परिवर्तनों को रखते हैं। वंशानुक्रमण ही यह निर्धारित करता है कि आगे आने वाली पीढ़ी का स्वास्थ्य कैसा होगा? जनसंख्या का जैसा स्वास्थ्य होगा वैसी ही शारीरिक एवं मानसिक कुशलता एवं क्षमता उनमें होगी। जैविक कारक ही विवाह की आयु एवं उत्पादन दर को भी प्रभावित करते हैं। यदि हमारे वंशानुक्रमण में कोई परिवर्तन होता है तो हमारे समाज में अनेक परिवर्तन होते हैं।

समाज में प्रत्येक व्यक्ति शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से अन्य व्यक्तियों से थोड़ा-बहुत भिन्न होता है। कुछ व्यक्ति तीक्ष्ण बुद्धि वाले होते हैं तो कुछ मन्द बुद्धि वाले; कुछ व्यक्ति गोरे रंग के होते हैं तो कुछ काले रंग के; कुछ व्यक्ति लम्बे होते हैं तो कुछ बौने; कुछ व्यक्ति मोटे होते हैं तो कुछ पतले। समाज में इस प्रकार की भिन्नता का पाया जाना आनुवंशिकता से सम्बन्धित है। समाज के सदस्यों में पाए जाने वाले ये अन्तर आनुवंशिकता के कारण ही होते हैं।

'आनुवंशिकता' शब्द अंग्रेजी के **'हिरेड्टी'** (Heredity) शब्द का हिन्दी रूपान्तर है जो कि प्राणिशास्त्र में 'उत्पत्ति की प्रक्रिया' का परिचायक है। हम जानते हैं कि जब बच्चा जन्म लेता है तो उसे अपना शरीर अपने माता-पिता द्वारा प्राप्त होता है। माता-पिता के रंग, स्वास्थ्य तथा कद का बच्चों पर प्रभाव पड़ता है। बच्चों के शरीर के विभिन्न अंगों (यथा हाथ-पैर, नाक-कान, आँख-मुँह, सिर-मस्तिष्क आदि) पर उनके माता-पिता का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। यदि बच्चों की शारीरिक रचना अपने माता-पिता से मिलती है तो हमें बड़ा सामान्य-सा लगता है और यदि शारीरिक रचना में काफ़ी अन्तर है तो हमें बड़ा अजीब-सा लगता है। शारीरिक विशेषताओं के अतिरिक्त बच्चों में माता-पिता की मानसिक विशेषताएँ भी होती हैं। वे सभी वस्तुएँ, जो उसे अपने पूर्वजों से मिलती हैं, मनुष्य की आनुवंशिकता कहलाती हैं। यह प्रक्रिया केवल मनुष्यों तक ही सीमित नहीं है अपितु इसे समस्त प्राणि-जगत में देखा जा सकता है। कीड़े-मकोड़े व पशु-पक्षी भी अपना प्रतिरूप उत्पन्न करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक प्राणी में सन्तानोत्पत्ति की शक्ति होती है और वे अपने विशिष्ट लक्षण अपनी सन्तानों को हस्तान्तरित कर देते हैं। यह प्रक्रिया छोटे-से-छोटे प्राणी से लेकर बड़े-से-बड़े प्राणी में पाई जाती है। प्राकृतिक नियम पर आधारित यह प्रक्रिया अति पूर्णता और कुशलता

Scanned with CamScanner

के साथ चलती रहती है। इस जटिल प्रक्रिया को समझने में वैज्ञानिक प्रारम्भ से ही प्रयत्नशील रहे हैं और आज विज्ञान की एक विशिष्ट शाखा जनन शास्त्र या जननिकी (Genetics) इन जैविक तथ्यों के विश्लेषण में लगी हुई है।

वंशानुक्रमण बालकों के शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाला एक महत्त्वपूर्ण कारक है। जिस प्रकार बीज के मौलिक गुण विकसित वस्तु में पाए जाते हैं, भूमि और बीज के संसर्ग से प्रत्येक वस्तु विकसित पाती है तथा कमजोर बीज से पौधा कमजोर ही विकसित होता है, ठीक इसी भाँति, कमजोर माता-पिता की सन्तान भी दुर्बल रहती है। अनुसन्धानों के आधार पर यह पाया गया है कि स्वस्थ माता-पिता की सन्तानों का शारीरिक विकास स्वाभाविक रूप से होता है। इसके विपरीत, जिन सन्तानों के माता-पिता रुग्ण रहते हैं अथवा जिनमें पीढ़ी-दर-पीढ़ी किसी रोग का विकास होता रहता है, उनकी सन्तानों में भी शारीरिक दृष्टि से कोई-न-कोई असामान्यता परिलक्षित होती है। ऐसा माना जाता है कि रोगों की उत्पत्ति का 60 प्रतिशत कारण पैतृक सम्पत्ति होती है। यदि खान-पान, रहन-सहन, विचार-आस्था, प्रवृत्ति मनोवृत्ति पैतृक रहती है तो ऊपर से आई हुई बीमारियाँ भी पनपने लगती हैं, जैसे (सिफलिस) खारिश, सुजाक (गनोरिया), तपेदिक (टीबी) दमा (अस्थमा), कोढ़ (ल्यूकोडरमा) आदि। बच्चों का कद, आकार, नाक-नक्शे भी पैतृक सम्पदा दर्शाते हैं। बालकों का स्वभाव, बोलचाल का ढंग, सोचने का दृष्टिकोण एवं व्यवहार-कुशलता पर भी घरवालों व पूर्वजों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। इतना ही नहीं, प्रत्येक बालक में कुछ मानसिक योग्यताएँ ऐसी होती हैं जो उसे आनुवंशिकता के आधार पर प्राप्त होती हैं। इन मानसिक योग्यताओं को अर्जित मानसिक योग्यताएँ कहा जाता है। वातावरण के द्वारा यह सम्भव नहीं है कि अर्जित योग्यताओं में किसी प्रकार का परिवर्तन किया जा सके। गेट्स के अनुसार, "किसी बालक का उससे अधिक विकास नहीं हो सकता जितना कि उसकी आनुवंशिकता सम्भव बनाती है।"

सामाजिक परिवर्तन में जैविक कारकों की भूमिका
(Role of Biological Factors in Social Change)

सामाजिक परिवर्तन लाने में जैविक कारक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसे निम्न तथ्यों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—

(1) हमारी जैविक अर्थात् शारीरिक विशेषताओं का सम्बन्ध हमारी क्रियाओं, हमारे सामाजिक सम्बन्धों, हमारी सामाजिक संस्थाओं के विकास एवं विविध प्रकार की समितियों के निर्माण से होता है। यदि हमारी जैविक विशेषताओं में कोई परिवर्तन होता है तो समाज भी उससे प्रभावित होता है।

(2) जैविक परिवर्तन जनसंख्या की रचना या बनावट में भी परिवर्तन लाते हैं। यह परिवर्तन गुणात्मक एवं गणनात्मक दोनों रूपों में होता है। यदि जैविक कारणों से जनसंख्या में वृद्धि होती है तो निर्धनता, बेरोजगारी, भिक्षावृत्ति, आवास, बाल श्रम, अपराध, बाल अपराध इत्यादि समस्याएँ विकसित हो जाती हैं। यदि जनसंख्या कम होती है तो विवाह एवं परिवार से सम्बन्धित संस्थाएँ प्रभावित होती हैं। इसी भाँति, जनसंख्या में लिंगानुपात एवं आयु वितरण भी सामाजिक परिवर्तन के लिए उत्तरदायी है।

(3) जैविक दृष्टिकोण प्रत्येक व्यक्ति को जीवन का अधिकार नहीं देता क्योंकि जीवित रहने हेतु मानव को संघर्ष करना पड़ता है जिसे 'अस्तित्व के लिए संघर्ष' कहते हैं। यह संघर्ष तीन स्तरों पर होता है—प्रकृति के विरुद्ध संघर्ष, अन्य जीवों के प्रति संघर्ष तथा समान प्रजाति के जीवों में संघर्ष। इस संघर्ष में प्रकृति के द्वारा चुने हुए केवल सबल और योग्यतम व्यक्ति ही जीवित रहते हैं, जबकि निर्बल व्यक्तियों का निरसन हो जाता है।

(4) जैविक कारक अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक परिवर्तन लाने में सहायक हैं। आनुवंशिकता से सम्बन्धित जनसंख्या का गुणात्मक पक्ष इसका उदाहरण है। गुणात्मक पक्ष सबल एवं महापुरुषों पर आधारित है जिनका जन्म आनुवंशिकता द्वारा निर्धारित होता है।

(5) जैविक कारकों को कई बार गैर-मानवीय (Non-human) एवं मानवीय (Human) कारकों में भी विभाजित किया जाता है। गैर-मानवीय कारकों में पेड़-पौधों और जानवरों को सम्मिलित किया जाता है। इनसे मानव जीवन विविध रूप से प्रभावित होता है। मानव के अस्तित्व हेतु पेड़-पौधों एवं जनवरों की आवश्यकता होती है। इन्हीं से उसे भोजन, कपड़ा, ईंधन एवं औषधि इत्यादि प्राप्त होते हैं। जैसे ही इस गैर-मानवीय वातावरण में परिवर्तन होता है तो सामाजिक जीवन भी प्रभावित होने लगता है। इसी दृष्टि से पारिस्थितिकीय

Scanned with CamScanner

परिवर्तन (Ecological change) मानव जीवन पर गहरा प्रभाव डालता है। मानवीय जैविक कारक जनसंख्या के प्रजातिगत स्वभाव (Genetic character) को प्रभावित करने के साथ-साथ जनसंख्या के घनत्व एवं रचना को प्रभावित कर सामाजिक परिवर्तन लाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

(6) जैविक कारक व्यक्तियों के स्वास्थ्य को भी प्रभावित करते हैं। कमजोर माता-पिता की सन्तान स्वास्थ्य की दृष्टि से कमजोर होती है। आनुवंशिकता से केवल शारीरिक लक्षण ही आने वाली पीढ़ी में हस्तान्तरित नहीं होते, अपितु इसकी स्वास्थ्य के स्तर को निर्धारित करने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

(7) जैविक कारक व्यक्तियों के व्यक्तित्व को भी प्रभावित करते हैं। यदि मानव शरीर का कोई तन्त्र ठीक तरह से काम नहीं करता है तो इससे न केवल उस व्यक्ति का स्वास्थ्य ही प्रभावित होता है, अपितु उसके व्यक्तित्व पर भी काफी प्रभाव पड़ता है।

(8) जैविक कारक मानवीय जननक्षमता (Human fertility) को भी प्रभावित करते हैं। हमें यह नहीं भूलना चाहिए स्त्री-पुरुष सहवास एक जैविक प्रक्रिया है। प्रजनन इसी जैविक प्रक्रिया पर निर्धारित है। जैविक कारक गर्भधारण करने की क्षमता, जननक्षमता की आयु, गर्भपात, मृत्यु-दर इत्यादि को निर्धारण करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसीलिए सामाजिक परिवर्तन लाने में इनकी दूरगामी भूमिका होती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जैविक कारक प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक परिवर्तन लाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यद्यपि अन्य कारकों की तुलना में इनकी भूमिका को सीमित माना जाता है, तथापि इन्हें नकारना सामाजिक परिवर्तन को समझने की दृष्टि से उचित नहीं है।

जनसंख्यात्मक कारक
[DEMOGRAPHIC FACTORS]

जनसंख्या और समाज का गहरा सम्बन्ध है। जनसंख्या ही समाज का आधार है क्योंकि व्यक्तियों के बीच सम्बन्धों की व्यवस्था ही समाज का निर्माण करती है। समाज की निरन्तरता भी जनसंख्या की निरन्तरता के द्वारा ही बनी रहती है। इसी भाँति, समाज के आदर्श और मूल्य जनसंख्या को प्रभावित करते हैं। विवाह के समय आयु, सन्तान के प्रति दृष्टिकोण, भोजन सम्बन्धी रीति-रिवाज, समाज का शान्तिप्रिय या युद्धप्रिय होना आदि जनसंख्या की मात्रा और रचना (Composition) को प्रभावित करते हैं। इसलिए किसी समाज की जनसंख्या में घटित होने वाला कोई भी परिवर्तन समाज को अवश्य प्रभावित करता है। यही कारण है कि आधुनिक समाजों में जनसंख्या का अध्ययन गम्भीरता से किया जाता है और जनांकिकी एक अलग विज्ञान के रूप में स्थापित है। हमारे देश में जनांकिकी सम्बन्धी गम्भीर और वैज्ञानिक अध्ययन किए जा रहे हैं ताकि राष्ट्रीय जनसंख्या नीति का निर्धारण कर जनसंख्या नियन्त्रण के लिए योजनाबद्ध कार्यक्रम बनाए जा सकें। सामाजिक परिवर्तन लाने में भी जनसंख्यात्मक कारकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

सामाजिक परिवर्तन में सहायक जनसंख्यात्मक कारक
(Demographic Factors conducive to Social Change)

किसी भी समाज में हो रहे परिवर्तन को समझने हेतु जनसंख्यात्मक कारकों को समझना अनिवार्य है क्योंकि जनसंख्या के परिमाण एवं रचना के साथ-साथ प्रमुख जनसंख्यात्मक (जनांकिकीय) प्रक्रियाओं का समाज में होने वाले परिवर्तन से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। **सोरोकिन** (Sorokin) जैसे विद्वानों ने जनसंख्यात्मक कारकों में जनसंख्या के आकार तथा घनत्व में वृद्धि अथवा ह्रास को सम्मिलित किया है। ऐसे विद्वानों का मत है कि जनसंख्या के आकार एवं घनत्व ऐसे जनसंख्यात्मक कारक हैं जिन पर समाज की प्रगति निर्भर करती है। सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करने वाले जनसंख्यात्मक कारकों को निम्नलिखित दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है—

(अ) जनसंख्या का परिमाण एवं रचना
(Quantity and Composition of Population)

किसी भी समाज की जनसंख्या का परिमाण (आकार) एवं रचना सामाजिक संरचना को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने वाले कारक माने जाते हैं। इनसे न केवल हमारा जीवन स्तर प्रभावित होता है, अपितु सामाजिक मूल्य, आदर्श, विश्वास, परम्पराओं और संगठनों पर भी इनका प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। जनसंख्या के परिमाण एवं रचना में अग्रलिखित कारकों को सम्मिलित किया जाता है—

Scanned with CamScanner

(1) जनसंख्या (Population)—किसी भी समाज का स्थायित्व जनसंख्या की निरन्तरता पर निर्भर करता है। अत्यधिक जनसंख्या के सामाजिक प्रभाव निर्धनता, बेरोजगारी तथा भुखमरी के रूप में सामने आते हैं। इससे न केवल खाद्य समस्या गम्भीर हो जाती है, अपितु समाज का अस्तित्व ही खतरे में पड़ने लगता है। ऐसी स्थिति में समाज ऐसे उपायों को प्राथमिकता देता है जो जनसंख्या नियन्त्रण में सहायक होते हैं। अत्यधिक कम जनसंख्या भी विकास में अवरोधक मानी जाती है क्योंकि कम मानव संसाधन होने से प्राकृतिक संसाधनों का दोहन ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है। चीन एवं भारत जनसंख्या की दृष्टि से बड़े देश माने जाते हैं जिनमें जनसंख्या की निरन्तर वृद्धि हो रही है। भारत की 2001 ई० में जनसंख्या 102·70 करोड़ थी जो कि 2011 ई० में बढ़कर 121·02 करोड़ हो गई। यह जनसंख्या विस्फोट की स्थिति ही कही जा सकती है।

भारत में बढ़ती हुई जनसंख्या के सामाजिक प्रभाव भी स्पष्ट रूप में देखे जा सकते हैं। भूमि पर भार और घनत्व बढ़ गया है और जमीन के दाम आसमान छूने लगे हैं। पंचवर्षीय योजनाओं के बावजूद प्रति व्यक्ति आय सन्तोषजनक रूप में नहीं बढ़ पाती क्योंकि बढ़ती हुई जनसंख्या स्थिति को पूर्ववत् कर देती है। स्कूलों, अस्पतालों, रोजगार के दफ्तरों, बसों और रेलों में हर जगह भीड़ दिखाई देती है। युवाओं में शिक्षित व अशिक्षित बेरोजगारी खतरनाक स्तर पर पहुँच रही है। न्यूनतम अनिवार्य आवश्यकताओं (भोजन, आवास एवं वस्त्र आदि) के अभाव के परिणामस्वरूप जीवन स्तर में भी परिवर्तन होने लगता है। शिक्षा में कमी, चोरी, लूटमार, अपराध, भ्रूण हत्या, विलम्ब विवाह, कुपोषण, निम्न जन स्वास्थ्य आदि समस्याएँ पनपने लगती हैं। इससे समाज में सामंजस्य बनाए रखने की समस्या भी विकसित हो जाती है। निराश युवकों में मादक पदार्थों की लत, बढ़ती हुई अपराधवृत्ति या आतंकवाद की ओर आकर्षण कहीं जनसंख्या वृद्धि के कारण तो नहीं है?

(2) जन घनत्व (Density of population)—जन घनत्व का अनुमान प्रति वर्ग किलोमीटर में जनसंख्या के आधार पर लगाया जाता है। अनेक देश ऐसे हैं जिनमें जन घनत्व कम है अर्थात् देश का कुल क्षेत्रफल एवं जनसंख्या का अनुपात ऐसा है कि प्रति वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में कम जनसंख्या निवास करती है। दूसरी ओर अनेक देश ऐसे हैं जहाँ पर जनसंख्या का घनत्व तेजी से बढ़ रहा है। जनसंख्या के घनत्व सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करने वाला प्रमुख कारक माना जाता है। भारत में 1921 ई० में जन घनत्व प्रति वर्ग किलोमीटर 81 था, 1951 ई० में 117, 1971 में 178, 1991 में 267 तथा 2001 ई० में 324 था जो कि 2011 ई० में बढ़कर 382 हो गया है। जन घनत्व में होने वाली निरन्तर वृद्धि से भूमि पर जनसंख्या का भार बढ़ रहा है जिससे भूमि की कीमत में निरन्तर वृद्धि हो रही है तथा आवास की समस्या गम्भीर होती जा रही है। बड़े नगरों में यह स्थिति स्पष्ट रूप में देखी जा सकती है। आवास की समस्या गन्दी बस्तियों के विकास के लिए भी उत्तरदायी मानी जाती है। इन गन्दी बस्तियों (मलिन बस्तियाँ) में रहने वालों का जीवन स्तर अत्यन्त दयनीय होता है तथा वैयक्तिक एवं पारिवारिक विघटन के साथ-साथ अपराध, बाल अपराध, मद्यपान, जुआ, वेश्यावृत्ति इत्यादि समस्याओं का भी बोलबाला होता है।

जन घनत्व की दृष्टि से यह तथ्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि भारत के विभिन्न राज्यों में इसमें काफी असमानताएँ पाई जाती हैं। उदाहरणार्थ, अरुणाचल प्रदेश में जहाँ जन घनत्व मात्र 17 व्यक्ति/वर्ग किमी० है तो बिहार में यह 1,102 व्यक्ति/वर्ग किमी० है। केन्द्रशासित प्रदेशों में सर्वाधिक जन घनत्व दिल्ली का 11,297 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी० है, जबकि अण्डमान एवं निकोबार द्वीप समूह में जन घनत्व केवल 46 व्यक्ति/वर्ग किमी० है।

(3) आयु संरचना (Age structure)—जनसंख्या की आयु संरचना से अभिप्राय कुल जनसंख्या के सन्दर्भ में विभिन्न आयु-वर्गों में व्यक्तियों के अनुपात से है। आयु संरचना विकास के स्तरों में होने वाले परिवर्तनों के अनुसार बदलती रहती है। पहले निम्न स्तरीय चिकित्सा सुविधाओं, अकाल, युद्ध, संक्रामक रोगों के प्रकोप, जनसंख्या नीति तथा अनेक अन्य कारणों से जीवन अवधि अपेक्षाकृत कम थी। इसके अतिरिक्त शिशुओं तथा प्रसूताओं की मृत्यु की ऊँची दरें भी आयु संरचना को प्रभावित करती हैं। आयु संरचना का भी सामाजिक परिवर्तन से गहरा सम्बन्ध है। आर्थिक विकास और संवृद्धि का आयु संरचना से घनिष्ठ सम्बन्ध है। विकास के साथ-साथ जीवन स्तर में सुधार होता जाता है जिसके परिणामस्वरूप आयु की सम्भाविता भी बढ़ जाती है। वर्तमान में भारत की जनसंख्या बहुत जवान है अर्थात् अधिकांश भारतीय युवा अवस्था में हैं और यहाँ की आयु का औसत भी अन्य देशों की तुलना में कम है। देश की सम्पूर्ण जनसंख्या में 25 वर्ष तक के आयु वर्ग

Scanned with CamScanner

वाले लोगों का अनुपात लगभग आधा है। वृद्धों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है तथा देश की कुल जनसंख्या में 7·3 प्रतिशत भागीदारी के साथ वृद्धों की कुल जनसंख्या 9 करोड़ तक पहुँच चुकी है।

यदि किसी देश की जनसंख्या में वृद्धों की संख्या अधिक होती है तो अनेक प्रकार की समस्याएँ विकसित हो सकती हैं क्योंकि कार्यशील जनसंख्या की कमी होने लगती है। आज भारत विश्व के सभी देशों में ऐसा देश है जिसमें युवा जनसंख्या का प्रतिशत अत्यधिक है। भारतीय जनसंख्या में बच्चों की जनसंख्या बहुत अधिक है। सामाजिक परिवर्तन की दृष्टि से इस आयु संरचना के कुछ स्पष्ट सामाजिक परिणाम स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं; जैसे—आर्थिक सुख के लिए जिस कार्यशील जनसंख्या की आवश्यकता है वह प्राप्त नहीं है। यदि इस कार्यशील जनसंख्या में से बहुत बड़ा भाग महिलाओं का निकाल दिया जाए, जो केवल गृह कार्य में लगी हैं, तो कार्यशील जनसंख्या का अनुपात और भी कम हो जाता है। स्वाभाविक ही भारत में निर्भरता का भार (Dependency load) अधिक है। भारत में अब भी संयुक्तता की स्थिति है इसीलिए परिवार में छोटे भाई-बहन और बच्चे मिलाकर और बूढ़े माता-पिता को सम्मिलित करके एक कमाने वाले व्यक्ति पर शुरू में ही 6-7 व्यक्तियों का भार आ पड़ता है। सच तो यह है कि अधिकांश भारतीय युवकों को इतना निर्भरता भार वहन करना पड़ता है कि उन्हें महसूस ही नहीं होता कि कब जवानी उनके पास से गुजर गई। वे सीधे ही किशोर अवस्था से मानसिक दृष्टि से बुढ़ापे में पहुँच जाते हैं। दूसरी ओर, विकसित देशों में कार्यशील जनसंख्या लगभग 60 प्रतिशत होती है तथा वहाँ केन्द्रक परिवार वाली संस्कृति निर्भरता भार को कम से कम कर देती है। परन्तु इससे वहाँ बूढ़े लोगों में एकाकीपन और आर्थिक रूप से समाज-सेवी संस्थाओं या सरकारी अनुदान पर निर्भरता की समस्या बढ़ रही है। भारत में भी बुजुर्गों की संख्या में वृद्धि उनकी उपेक्षा का कारण मानी जाती है। अकेलापन, सामाजिक एवं मानसिक असुरक्षा जैसी समस्याएँ उन्हें ऐसा जीवन व्यतीत करने के लिए विवश कर देती हैं जिससे उनमें जीवित रहने की इच्छा ही समाप्त हो जाती है।

(4) लिंग अनुपात (Sex ratio)—लिंग अनुपात भी सामाजिक परिवर्तन के लिए उत्तरदायी कारक माना जाता है। यदि पुरुषों की तुलना में स्त्रियों का अनुपात कम होता है तो ऐसी मान्यताएँ विकसित होती हैं जो स्त्रियों की स्थिति ऊँचा करने वाली होती हैं। दूसरी ओर यदि पुरुषों का अनुपात स्त्रियों की तुलना में अधिक होता है तो बहुपति जैसी प्रथाओं का प्रचलन स्त्रियों की स्थिति में ह्रास का कारण बन जाता है। चीन, दक्षिण कोरिया और विशेषत: भारत जैसे कुछ देशों में स्त्री-पुरुष अनुपात घटता जा रहा है। उदाहरणार्थ, भारत में स्त्री-पुरुष जनसंख्या अनुपात स्त्रियों की जनसंख्या में निरन्तर ह्रास को प्रकट कर रहा है जो समाज वैज्ञानिकों में चिन्ता का विषय है। 1901 ई० में प्रति हजार पुरुषों पर 972 स्त्रियों की जनसंख्या थी, जबकि 1911 ई० में 964, 1921 ई० में 955, 1931 ई० में 950, 1941 ई० में 945, 1951 ई० में 946, 1961 ई० में 941, 1971 ई० में 930, 1981 ई० में 934, 1991 ई० 929 तथा 2001 ई० में 933 रह गई है। 2011 ई० में यह थोड़ा बढ़कर 940 हो गया है। शिशु लिंगानुपात (0 से 6 वर्ष) की दृष्टि से यह प्रति 1000 बालक : 914 बालिकाएँ है।

लिंगानुपात की दृष्टि से हरियाणा एवं पंजाब जैसे राज्यों में तो स्थिति और भी खराब है क्योंकि वहाँ प्रति 1,000 पुरुषों के पीछे स्त्रियों की संख्या निरन्तर कम हो रही है। उत्तर-पूर्व तथा दक्षिण के अधिकतर राज्यों में लिंगानुपात राष्ट्रीय औसत से अधिक है। देश में केरल में लिंगानुपात सबसे अधिक (1084) है। उत्तर भारत में हिमाचल प्रदेश (974), उत्तराखण्ड (963), झारखण्ड (947), पश्चिम बंगाल (947) और छत्तीसगढ़ (991) जैसे राज्यों में लिंगानुपात राष्ट्रीय औसत से अधिक है। इसके विपरीत, उत्तरी-पश्चिमी तथा मध्य भारत के सभी राज्यों तथा केन्द्रशासित प्रदेशों में लिंगानुपात राष्ट्रीय औसत से कम है। उत्तर-पूर्व के सिक्किम, नागालैण्ड एवं अरुणाचल प्रदेश में भी लिंगानुपात कम है। 2011 ई० की जनगणनानुसार मध्य प्रदेश में लिंगानुपात 930 है।

स्त्री-पुरुष अनुपात में आई एकाएक गिरावट ने जनसांख्यिकीविदों, समाजशास्त्रियों, नीति-निर्माताओं, सामाजिक कार्यकर्ताओं तथा इस विषय से जुड़े नागरिकों की चिन्ता को बढ़ा दिया है। इसे वर्तमान सामाजिक मानकों से जोड़ा जा सकता है जिसके अनुसार पुरुषों को स्त्रियों की तुलना में कहीं अधिक महत्त्व दिया जाता है। इसी के परिणामस्वरूप बेटे को प्राथमिकता दी जाती है तथा बालिका शिशुओं की उपेक्षा की जाती है। स्त्री-पुरुष अनुपात में गिरावट के अन्य अनेक कारण भी हैं जिनमें स्वास्थ्य सम्बन्धी कारण प्रमुख है जो पुरुषों की बजाय स्त्रियों (गर्भ धारण करने और फिर बच्चा पैदा करने के कारण) को ही प्रभावित करता है। स्त्रियों में कुपोषण, अशिक्षा एवं जागरूकता का निम्न स्तर भी इसके लिए उत्तरदायी है। समाजशास्त्रियों का यह भी

Scanned with CamScanner

मानना है कि इस अनुपात में असन्तुलन का एक कारण बालिका शिशुओं के प्रति भेदभावपूर्ण व्यवहार है। शैशवावस्था में बच्चियों की देखभाल की घोर उपेक्षा, लड़की होने पर गर्भपात, धार्मिक या सांस्कृतिक अन्धविश्वासों के कारण शैशवावस्था में ही बालिका शिशुओं की हत्या आदि भी स्त्रियों के अनुपात में गिरावट के लिए उत्तरदायी कारण हैं। सोनोग्राम (अल्ट्रासाउण्ड) जो मूल रूप में भ्रूण के जननिक या अन्य विकारों का पता लगाने के लिए विकसित किया गया था, का उपयोग अब भ्रूण के लिंग का पता लगाने तथा बालिका भ्रूण को गर्भ में ही नष्ट कर देने के लिए किया जाने लगा है। ऐसा भी देखने में आया है कि अधिक समृद्धिशाली क्षेत्रों में ही स्त्री-पुरुष अनुपात सबसे निम्न है। इसलिए चयनात्मक गर्भपातों की समस्या गरीबी या अज्ञान अथवा संसाधनों के अभाव के कारण उत्पन्न नहीं हुई है।

(5) साक्षरता दर (Literacy rate)—जनगणना की दृष्टि से उस व्यक्ति को शिक्षित समझा जाता है जो अपने विवेक से किसी भी भाषा में लिख और पढ़ सकता हो। जो व्यक्ति पढ़ तो सकता है पर लिख नहीं सकता हो, वह साक्षर नहीं कहा जा सकता। किसी भी समाज का विकास जनसंख्या में साक्षरता दर पर निर्भर करता है। ऐसा माना जाता है कि ऐसे समाज में जहाँ लोग शिक्षित हैं, प्रगति एवं विकास अधिक होता है। दूसरी ओर, अशिक्षित जनसंख्या वाले समाजों में परम्पराओं, अन्धविश्वासों के कारण विकसित होने वाली कुरीतियों के कारण प्रगति एवं विकास अवरुद्ध हो जाता है। इसीलिए प्रत्येक देश का यह प्रयास रहता है कि वह जनसंख्या में साक्षरता दर में वृद्धि हेतु कारगार उपाय करे।

भारत में 1901 ई० में 5·35 प्रतिशत व्यक्ति ही साक्षर थे। 1951 ई० में यह प्रतिशत 16·67 था, 1981 ई० में यह बढ़कर 36·17 हो गया, जबकि 1991 ई० में यह बढ़कर 52·11 प्रतिशत, 2001 ई० में 65·38 प्रतिशत तथा 2011 ई० में 74·04 प्रतिशत हो गया है। इससे यह प्रकट होता है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् साक्षरता दर में तीव्र गति से वृद्धि हुई है, परन्तु फिर भी देश में लगभग एक-चौथाई से अधिक लोग अभी भी अशिक्षित हैं। स्त्रियों में साक्षरता में प्रगति अधिक उल्लेखनीय हुई है। 1901 ई० में कुल 0·60 प्रतिशत स्त्रियाँ साक्षर थीं, 1951 ई० में 7·93, 1981 ई० में 24·88, 1991 ई० में 39·42, 2001 ई० में 54·16 प्रतिशत तथा 2011 ई० में 65·46 प्रतिशत स्त्रियाँ साक्षर थीं, परन्तु साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि स्त्रियों का एक-तिहाई भाग अब भी अशिक्षित है। स्त्रियों की तुलना में पुरुषों की साक्षरता दर 82·14 प्रतिशत है। देश के सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए साक्षरता वृद्धि को जानना अत्यन्त आवश्यक है।

(6) ग्रामीण-नगरीय अनुपात (Rural-urban ratio)—ग्रामीण और नगरीय जनसंख्या का परिवर्तनशील अनुपात भी सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करता है। जैसे-जैसे नगरीय जनसंख्या में वृद्धि होती है, वैसे-वैसे परिवर्तन की गति भी तीव्र होती जाती है। ग्रामीण क्षेत्रों में परिवर्तन की गति अपेक्षाकृत कम होती है। नगरीय क्षेत्रों में अत्यधिक सुविधाएँ होने के कारण जीवन स्तर नगरीय क्षेत्रों की तुलना से अच्छा होता है। जो देश आज नगर-राज्य के रूप में विकसित हुए हैं उनमें उनकी प्रगति अत्यन्त उल्लेखनीय है। भारत में 1921 ई० में नगरीय जनसंख्या 11·2 प्रतिशत थी, 1951 ई० में यह 17·3 प्रतिशत, 1971 ई० में 19·91 प्रतिशत, 1991 ई० में 25·72 प्रतिशत, 2001 ई० में 25·71 प्रतिशत तथा 2011 ई० में 31·16 प्रतिशत थी। इससे यह स्पष्ट होता है भारत में नगरीय जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि हुई है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जनसंख्या के परिमाण एवं रचना सम्बन्धी कारक सामाजिक परिवर्तन लाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जनसंख्या में बच्चों एवं बूढ़ों का अनुपात, स्त्री एवं पुरुषों का अनुपात, विवाहित एवं अविवाहितों का अनुपात, विधुर एवं विधवाओं की संख्या तथा कुल जनसंख्या में प्रजनन हेतु सक्षम स्त्री-पुरुषों की संख्या ऐसे कारक माने जाते हैं जिनसे जीवन स्तर के साथ-साथ मानसिक स्तर भी प्रभावित होता है। उदाहरणार्थ, स्त्री-पुरुष अनुपात में असन्तुलन से समाज के रीति-रिवाजों एवं प्रथाओं में परिवर्तन होने लगता है। इसी भाँति, यदि जनसंख्या में वृद्धों की संख्या अधिक होती है तो एक ओर नवीन आविष्कारों को प्रोत्साहन मिलता है तो दूसरी ओर युवा जनसंख्या की कमी के कारण राष्ट्र निर्बल होने लगता है। अधिक युवा जनसंख्या वाले देश सापेक्ष रूप में अधिक शक्तिशाली राष्ट्र समझे जाते हैं।

(ब) प्रमुख जनांकिकीय प्रक्रियाएँ
(Major Demographic Processes)

जनांकिकीय प्रक्रियाओं में प्रजननता, मर्त्यता, अस्वस्थता, जीवन की प्रत्याशित आयु एवं प्रवसन को सम्मिलित किया जाता है। इन जनांकिकीय प्रक्रियाओं का संक्षिप्त विवेचन अग्र प्रकार है—

Scanned with CamScanner

(1) प्रजननता (Reproduction)—प्रजनन का सम्बन्ध जन्म-दर से होता है। यदि जन्म-दर अधिक है तो जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि होती है। दूसरी ओर, कम जन्म-दर जनसंख्या में सन्तुलन बनाए रखने में सहायक होती है। प्रजननता का भी जनसंख्या के आकार को प्रभावित करने के कारण सामाजिक परिवर्तन लाने में महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। अधिक जन्म-दर होने पर जनसंख्या नियन्त्रण के उपायों को प्राथमिकता दी जाती है तो कम जन्म-दर होने पर जनसंख्या वृद्धि को प्रोत्साहन देने वाले उपाय अपनाने पर बल दिया जाता है। किसी भी समाज का अध्ययन प्रजननता की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जाता है। उदाहरणार्थ, भारत में जनाधिक्य की समस्या है और जन्म-दर को घटाने के योजनाबद्ध प्रयास किए जा रहे हैं। 1989 ई० में भारत में जन्म-दर 30·5 प्रति हजार जनसंख्या थी। यह प्रजनन दर विभिन्न क्षेत्रों व सामाजिक समूहों में अलग-अलग है। **एस० एन० अग्रवाल** ने दिल्ली के आस-पास छह गाँवों में प्रजनन के प्रतिमानों के अध्ययन के आधार पर हमें यह बताया है कि प्रजनन दर जाति, व्यवसाय, विवाह के समय आयु, वैधव्य (Widowhood), वैधव्य के समय आयु, शिशु तथा बाल-मर्त्यता एवं जन्म व मृत्यु के पंजीकरण से प्रभावित होती है। जन्म-दर सम्बन्धी तथ्यों से हमें यह भी पता चलता है कि 1931 ई० में 49 जन्म-दर थी, जो कि 1951 में 43, 1961-70 में 41·2, 1971-80 में 31·1, 1981 में 33·9, 1991 में 29·5, 2003 में 23·28 तथा 2011 में 20·97 थी। इससे यह प्रतीत होता है कि जन्म-दर में धीरे-धीरे ह्रास हुआ है जिसका कारण स्त्रियों की प्रजनन क्षमता में कमी हो जाना नहीं है बल्कि विवाह के समय आयु एवं स्त्रियों की अपनी बदलती हुई सामाजिक प्रस्थिति है। यही कारण है आज कल सरकार प्रतिदिन दूरदर्शन पर इस कानूनी स्थिति का प्रचार कर रही है कि 18 वर्ष से कम लड़की और 21 वर्ष से कम के लड़के का विवाह न किया जाए। यदि इसे और अधिक दृढ़ता से लागू किया जा सके तो निश्चित ही जन्म-दर नियन्त्रण करने में सहायता मिलेगी परन्तु इसके लिए कानून ही नहीं वरन् ऐच्छिक संस्थाओं का सहयोग भी लेना पड़ेगा, क्योंकि जन-जागरूकता के अभाव में तो राजस्थान में प्रचलित ऐसी प्रथाओं का उन्मूलन नहीं किया जा सकेगा जिनमें प्रति वर्ष सामूहिक तौर पर उत्सव के रूप में समुदाय विशेष में बाल विवाह सम्पन्न होते हैं। दु:ख की बात यह है कि वहाँ न केवल सरकारी कर्मचारी अपितु कभी-कभी मन्त्री भी उपस्थित होते हैं।

इस भाँति, प्रजनन का सही अनुमान समाजशास्त्रीय दृष्टि से तभी हो सकता है जब विभिन्न वर्गों की स्त्रियों, विभिन्न धर्मों, खान-पान, जातियों के आधार पर जन्म-दर का अध्ययन किया जाए। इसी दृष्टि से परिवार नियोजन पर भी पुन: विचार की आवश्यकता है। 1965 ई० से सरकार बन्ध्यीकरण या अनुर्वरीकरण पर जोर दे रही थी। 1970 ई० में इस कार्य के लिए शिविर योजना तक अपनाई गई। 1976 ई० में लक्ष्य प्राप्त करो अभियान चलाया गया। अब इस कार्यक्रम से बाध्यता का तत्त्व निकाल दिया गया है और परिवार कल्याण के अन्तर्गत जनता को समझा-बुझा कर इस ओर प्रेरित करने का प्रयास किया जा रहा है। परिवार नियोजन में सफलता के कारण ही जन्म-दर कम हुई है। इसका अन्य कारण स्वास्थ्य सुविधाओं में वृद्धि तथा लोगों में जनसंख्या नियन्त्रण के महत्त्व के प्रति जागरूकता भी है।

(2) मर्त्यता (Mortality)—जनसंख्या में वृद्धि केवल जन्म-दर पर ही निर्भर नहीं करती है, अपितु मृत्यु-दर इसे काफी सीमा तक प्रभावित करता है। यदि जन्म-दर एवं मृत्यु-दर दोनों अधिक हैं तो जनसंख्या में अधिक वृद्धि नहीं होती। यदि जन्म-दर मृत्यु-दर से अधिक है तो जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि होने लगती है। इसके विपरीत, यदि मृत्यु-दर जन्म-दर से अधिक है तो जनसंख्या कम होने लगती है तथा जनसंख्या का प्रतिपालन एक समस्या बन जाता है। इसीलिए मर्त्यता का भी जनसंख्या के आकार को प्रभावित करने के नाते सामाजिक परिवर्तन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। भारत में पिछले लगभग छह दशकों में मर्त्यता अर्थात् मृत्यु-दर घटाने में आशातीत सफलता मिली है। 1921 ई० में मर्त्यता 49 (प्रति हजार व्यक्ति) थी, 1951 में यह 31, 1981 में 12·5 तथा 1991 में 9·8, 2003 में 8·49 तथा 2011 में 7·48 थी। इसका कारण हैजा, प्लेग, क्षय, चेचक, मलेरिया जैसे संक्रामक रोगों की रोकथाम है तथा साथ ही प्राकृतिक प्रकोपों; जैसे—अकाल, बाढ़, सूखा, भूकम्प आदि से होने वाली मृत्यु-दर भी रोकी जा सकी है। जनस्वास्थ्य एवं चिकित्सा सुविधाएँ बढ़ी हैं। इस भाँति, अधिक मातृत्व एवं शिशु कल्याण की सेवाओं के प्रसार के द्वारा शिशु-मृत्यु एवं प्रसव काल में स्त्रियों की मृत्यु को प्रभावशाली ढंग से घटाया जा सका है। भारत में मृत्यु-दर कम होने से जीवन की प्रत्याशा बढ़ गई है। 1921 ई० में प्रत्याशित आयु 19·4 वर्ष थी, 1951 ई० में 42·1 वर्ष, 1981 ई० में 54 वर्ष, 2001 ई० में 60·8 वर्ष और 2009 ई० में 69·89 हो गई है। स्त्रियों में पुरुषों की तुलना में जीवन की प्रत्याशा थोड़ी अधिक है।

Scanned with CamScanner

उन्नत समाजों; जैसे—अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, फ्रांस तथा जापान से हम अब भी बहुत पीछे हैं जहाँ यह क्रमश: 78·3, 81·2, 80·7 तथा 82·6 वर्ष है।

उपर्युक्त दोनों तथ्यों का परिणाम जनसंख्या में वास्तविक कुल वृद्धि है। स्वाभाविक ही जब जन्म-दर की अपेक्षा मृत्यु-दर तेजी से कम हो जाएगी और जीवन की औसत प्रत्याशा बढ़ जाएगी, तो जनसंख्या वृद्धि होगी ही। इसीलिए हमारे समाज में जनसंख्या की प्रमुख समस्या जन्म-दर को नियन्त्रित करना है जिसके लिए भारतीय जनसंख्या को शिक्षित करना एवं परिवार नियोजन को प्रोत्साहित करना अनिवार्य है।

वास्तव में, जन्म-दर एवं मृत्यु-दर दोनों ही जनसंख्या को प्रभावित करने वाली प्रमुख जनांकिकीय प्रक्रियाएँ हैं। यदि किसी देश में जन्म-दर कम तथा मृत्यु-दर अधिक होती है तो उस देश की जनसंख्या तीव्र गति से घटती है। कुछ ऐसे देश हैं जहाँ जन्म-दर एवं मृत्यु-दर दोनों ही अधिक होते हैं। ऐसे देशों में या तो जनसंख्या में स्थिरता की स्थिति विकसित हो जाती है अथवा अति न्यून वृद्धि होती है। यदि किसी देश में जन्म-दर अधिक तथा मृत्यु-दर कम है तो जनसंख्या में वृद्धि की गति अत्यधिक तीव्र हो जाती है। ऐसे देशों में सामाजिक परिवर्तन भी तीव्र गति से होते हैं। पूर्व सोवियत संघ में महायुद्धों के कारण जनसंख्या बहुत कम हो गई थी जिसे बढ़ाने हेतु वहाँ अधिक-से-अधिक बच्चों को जन्म देने पर बल दिया जाने लगा था। जिस स्त्री के कम बच्चे होते थे अथवा बिलकुल नहीं होते थे, उसे हीन दृष्टि से देख जाता था। इसके विपरीत, अधिक बच्चों वाली स्त्री को पुरस्कृत किया जाता था। जहाँ जनसंख्या का आकार छोटा होता है वहाँ समाज में इस प्रकार की संस्थाएँ विकसित होती हैं जिनसे जनसंख्या में वृद्धि की जा सके। यदि जनाधिक्य पाया जाता है तो रीति-रिवाजों एवं संस्थाओं में ऐसे परिवर्तन होते हैं जिनसे जनसंख्या कम की जा सके। परिवार नियोजन (कल्याण), विलम्ब विवाह, गर्भपात एवं गर्भ निरोध के साधनों को बढ़ावा दिया जाता है। विविध रूपों में जनता को परिवार नियोजन के लिए प्रोत्साहन दिया जाता है। इसीलिए यह सही कहा जाता है कि जनसंख्या के आकार का सामाजिक परिवर्तन से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है।

(3) अस्वस्थता (Morbidity)—सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करने वाला एक अन्य जनसंख्यात्मक कारक अस्वस्थता है। अस्वस्थता का सम्बन्ध किसी देश की जनसंख्या के स्वास्थ्य एवं रोगों से है। यदि जनसंख्या स्वस्थ है तो परिवर्तन एवं विकास त्वीव्रता से होता है। स्वस्थता की स्थिति में लोगों की शारीरिक एवं मानसिक कुशलता अधिक होती है। इससे उत्पादन अधिक होता है, प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती है तथा जीवन स्तर ऊँचा होने लगता है। दूसरी ओर, जनसंख्या के अस्वस्थता परिवर्तन एवं विकास को प्रभावित करती है। इसे परिवर्तन एवं विकास को अवरुद्ध करने वाला कारक माना जाता है। जनसंख्या में अस्वस्थ एवं वृद्धों की अधिक संख्या से आर्थिक उत्पादन कम होता है। इससे अमीर एवं गरीब में अन्तराल बढ़ने लगता है।

भारत में जनसंख्याशास्त्रियों और समाज वैज्ञानिकों ने अस्वस्थता एवं मृत्यु के कारणों की जाँच में रुचि हाल में ही लेना प्रारम्भ किया है। अधिकतर अध्ययन सामाजिक-आर्थिक कारकों एवं अस्वस्थता के बीच सम्बन्ध को लेकर किए गए हैं परन्तु उनमें प्रमाणित संप्रत्ययों के प्रयोग का अभाव है। इस दिशा में वैज्ञानिक अध्ययनों की आवश्यकता है। बालकों के लालन-पालन के तरीके, खान-पान की आदतें, आवास के प्रतिमान, शैक्षिक श्रेणी, विभिन्न आयु समूह, विभिन्न व्यवसाय समूह, ग्राम व नगर जीवन आदि के आधार पर अस्वस्थता की विस्तृत जाँच की जानी चाहिए। भारत में निश्चित ही रोगों की रोकथाम हुई है और स्वास्थ्य सुविधाओं में वृद्धि हुई है।

(4) प्रवसन (Migration)—प्रवसन का आशय उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा कोई व्यक्ति या समूह अपने मूल स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान की ओर जाता है। इस प्रक्रिया का अध्ययन दो दृष्टियों से किया जा सकता है—पहले, आन्तरिक प्रवसन अर्थात् एक ही समाज के अन्तर्गत जनसंख्या का देशान्तरण और दूसरे, एक देश से दूसरे देश की ओर देशान्तरण। प्रथम प्रकार का प्रवसन समाज में विजातीयता की वृद्धि करता है अर्थात् विभिन्न सांस्कृतिक, प्रजातीय एवं सामाजिक विशेषताओं वाले व्यक्ति समुदाय में विजातीयता लाते हैं। कालान्तर में बाहर से आए लोगों के साथ अन्तर्क्रिया करने के परिणामस्वरूप स्थानीय एवं बाहरी दोनों लोगों के व्यवहार प्रतिमान परिवर्तित होने लगते हैं। इसीलिए प्रवसन को परिवर्तन का एक प्रमुख कारक माना जाता है। यदि प्रवसन एक देश से दूसरे देश की ओर होता है तो उससे भी समायोजन की समस्या के साथ-साथ कई बार प्रजातीय संघर्ष की स्थिति विकसित होने लगती है। प्रवसन के परिणामस्वरूप यदि जनसंख्या कम या अधिक

Scanned with CamScanner

होने लगती है तो समाज में अनेक परिवर्तन प्रारम्भ हो जाते हैं। जनसंख्या के एकाएक कम होने अथवा बढ़ने के परिणामस्वरूप यौन अपराध, भ्रष्टाचार, दुराचार आदि में वृद्धि होने लगती है। 1947 ई० में देश के विभाजन के परिणामस्वरूप पाकिस्तान से आए शरणार्थियों तथा उसके पश्चात् 1971 ई० में बंगलादेश से आए शरणार्थियों के कारण भारतीय समाज में काफी परिवर्तन हुए। इसीलिए **स्मिथ** (Smith) ने कहा है कि प्रवसन प्रत्यक्ष रूप में न केवल जनसंख्या की शारीरिक अवस्था एवं स्वास्थ्य को प्रभावित करता है, अपितु समाज की सामाजिक संरचना एवं सामाजिक प्रक्रियाओं पर भी गहरा प्रभाव डालता है। इसका व्यक्तियों के व्यक्तित्व पर काफी प्रभाव पड़ता है।

जहाँ तक पहले प्रकार के प्रवसन का प्रश्न है तो निस्सन्देह कहा जा सकता है कि स्वतन्त्रता के बाद भारतीयों में प्रवसन की प्रवृत्ति में तीव्रता से वृद्धि हुई है। 1911 ई० से लेकर 1941 ई० तक भारत में प्रवसन-प्रवृत्ति में केवल 2·7 प्रतिशत की वृद्धि हुई थी, जबकि 1941 ई० से लेकर 1991 ई० के बीच करीब 12 प्रतिशत जनसंख्या ने स्थानान्तरण किया है। स्पष्ट है कि देश में विकास के अनेक कार्यक्रमों ने देशान्तरण को सुविधाजनक बनाया है। **ग्रीनवुड** (Greenwood) ने सुझाव दिया है कि भारत में शिक्षा-वृद्धि के साथ देशान्तरण भी बढ़ता है और यह भी प्रतिपादित किया है कि यह देशान्तरण उन नगरों की ओर ज्यादा होता है जहाँ पहले से ही शिक्षा का स्तर ऊँचा है। **एम० एस० गोरे** (M. S. Gore) ने उन समस्याओं की ओर इशारा किया है जो प्रवासी जनसंख्या के सामने मूल निवासियों के साथ सामंजस्य को लेकर उठ खड़ी होती हैं। उन्होंने बम्बई महानगर में बाहर से आए प्रवासियों का समाजशास्त्रीय अध्ययन किया है।

भारतीयों का अन्य देशों की ओर प्रवसन बहुत पहले से होता रहा है। अंग्रेजी शासनकाल के प्रारम्भ में अफ्रीका और अनेक देशों को भारतीय श्रम निर्यात किया गया। ऐसे देशों में भारतीय प्रवासी आज भी बड़ी संख्या में मौजूद हैं। आजादी के बाद यह प्रवसन-प्रवृत्ति कम नहीं हुई है। आज अमेरिका, कनाडा और इंग्लैण्ड जैसे विकसित देशों में बड़ी संख्या में भारतीय प्रवासी पहुँचे हैं और वहाँ बस गए हैं। इस तथ्य को लेकर एक विशिष्ट समस्या की भी चर्चा समय-समय पर होती रहती है और वह है भारत से बाहर की ओर 'बुद्धि का प्रवाह' (Brain drain)। अनेक भारतीय वैज्ञानिक व चिकित्सक, जो असाधारण प्रतिभा वाले हैं, विदेशों में कार्य करने के लिए प्रवास कर जाते हैं और भारतीय समाज उनकी प्रतिभा के फलों का प्रयोग करने से वंचित रह जाता है। यदि इसे रोकने का प्रयास करना है तो ऐसे प्रतिभासम्पन्न व्यक्तियों को कार्य करने के लिए उचित पर्यावरण व सुविधाएँ प्रदान करनी होंगी। कुछ भी हो, भारत में प्रवसन इतना नहीं हुआ है कि भारतीय जनसंख्या पर प्रभावशाली असर पड़ सके। अब भी आन्तरिक व बाह्य दोनों दृष्टियों से ही प्रवसन समस्यामूलक नहीं है।

जनयंख्यात्मक कारकों का प्रभाव केवल सामाजिक संरचना में परिवर्तन की दृष्टि से ही महत्त्वपूर्ण माना जाता, अपितु आर्थिक एवं राजनीतिक परिवर्तन की दृष्टि से भी इनके प्रभावों को अनदेखा नहीं किया जा सकता। उदाहरणार्थ, जनसंख्यात्मक कारक समाज के आर्थिक संरचना को प्रभावित कर आर्थिक परिवर्तन लाने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जनसंख्या में वृद्धि से उत्पादन की नवीन प्रविधियों का विकास होता है, नवीन आविष्कार होते हैं तथा सम्पत्ति के स्वामित्व की प्रकृति भी परिवर्तित होने लगती है। कम जनसंख्या एवं कम जन घनत्व वाले स्थानों में सामूहिक सम्पत्ति तथा घनी जनसंख्या एवं अधिक जन घनत्व वाले स्थानों पर व्यक्तिगत सम्पत्ति का पाया जाना इस परिवर्तन का द्योतक है। एक ओर **माल्थस** (Malthus) जैसे विद्वान् हैं जिनका मानना है कि जनसंख्या में वृद्धि से आर्थिक समृद्धता बाधित होती है, जबकि दूसरी ओर ऐसे विद्वान् भी हैं जिनका मत है कि जनसंख्या में वृद्धि आर्थिक समृद्धता में सहायक होती है। जनसंख्या वृद्धि आर्थिक संसाधनों पर प्रभुत्व जमाने को लेकर युद्ध की स्थिति भी विकसित कर सकती है। अनेक विद्वानों का मत है कि जनसंख्या की वृद्धि के कारण अधिक आर्थिक संसाधनों को प्राप्त करने की आवश्यकता ही युद्धों का कारण रही है। आर्थिक परिवर्तन के साथ-साथ अनेक विद्वानों ने यह मत भी प्रस्तुत किया है कि जनसंख्या के परिमाण एवं रचना का राजनीतिक संस्थाओं पर भी गहरा प्रभाव पड़ता है। इससे राजनीतिक स्थिरता प्रभावित होती है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जनसंख्यात्मक कारक सामाजिक परिवर्तन के प्रभावशाली कारक हैं। इनका किसी भी समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान होता है क्योंकि ऐसे परिवर्तन का सामाजिक जीवन के प्रत्येक पक्ष पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इसलिए इन परिवर्तनों का निरन्तर अध्ययन किया जाना चाहिए। इन अध्ययनों से प्राप्त तथ्यों के प्रकाश में एक गत्यात्मक राष्ट्रीय जनसंख्या नीति का निर्धारण होना चाहिए और योजनाबद्ध ढंग से जनसंख्या की रचना और प्रक्रियाओं पर नियन्त्रण रखना चाहिए। सामाजिक-आर्थिक विकास का यही एक मुक्ति-मार्ग है।

Scanned with CamScanner